arunjaity1:arunjaity.qxd 9/26/2010 9:05 PM Page 160



# एक ऋषि पुरुष का अवसान

1977 के लोकसभा चुनावों के बाद की बात है। वलरामपुर (उप्र) की रानी राजलक्ष्मी अपने महल में उदास बैठी थीं। मतदाताओं ने चुनाव मैदान में उतरे कई दूसरे सूरमाओं की तरह रानी के खाते में भी किस्त लिख दी थी और रानी के लिए यह कुछ ज्यादा ही अपमानजनक बात थी क्योंकि ऐसा उनके गृह क्षेत्र के मतदाताओं ने किया था। वे वलरामपुर लोकसभा क्षेत्र से कांग्रेस की प्रत्याशी थीं और कांग्रेसविरोधी लहर के बावजूद उनको ऐसे परिणाम की आशंका नहीं थी। ठीक है कि अटल विहारी वाजपेयी ने जनसंघ प्रत्याशी के तौर पर यह सीट जीतकर कांग्रेस का एकाधिपत्य पहले किसी चुनाव में ही खत्म कर दिया था मगर उनका मुकाबला रानी से थोड़े ही हुआ था। इस बार रानी मुकाबले में उतरी ही यह सोचकर थीं कि उनके 'पूर' के मतदाता उनको सिर-आंखों पर बिठायेंगे और प्रतिद्वन्द्वियों की जमानतें जब्त करा देंगे। जिस जनता पार्टी से उनका मुख्य मुकाबला था, उनके सौभाग्य से, उसने भी 'बाहरी' उम्मीदवार उतारा हुआ था और इसका लाभ उठाया जा सकता था। मगर अफसोस कि मतदाताओं ने 'आज्ञाकारी प्रजा' की भूमिका निभाने के बजाय रानी की पालकी ढोने से मना कर उस 'बाहरी' का ही अभिषेक कर दिया था।

रानी जितना सोचतीं, उनकी उदासी अपना घेरा उतना ही तंग करती जाती। तभी उनको एक आगंतुक के आने की खबर दी गयी। उन्होंने पूछा, कौन? उत्तर मिला, नानाजी देशमुख।

नानाजी देशमुख यानी वही बाहरी प्रत्याशी जो उनको हराकर वलरामपुर का सांसद बन बैठा था। क्यों आया है? जले पर नमक छिड़कने? उसको यह मजाल? लेकिन तब राजनीति इतनी शिष्टाचारविहीन नहीं हुई थी। सो, रानी ने यह सब नहीं सोचा। फिर भी वे बातचीत में तल्खी से परहेज नहीं कर सकी। बोली, 'मुझे चुनाव हराकर अब आप यहां क्या लेने आये हैं?'

नानाजी ने हाथ जोड़ लिये और विनम्रतापूर्वक कहा, 'क्या बताऊं, महारानी! आप लोगों ने मुझ बाहरी को अपना सेवक चुनते हुए यह भी नहीं सोचा कि मैं सेवा के लिए यहां रुकूंगा तो रहूंगा कहां? मेरे पास तो यहां सिर छुपाने तक की जगह नहीं है।' रानी फिर भी तल्ख बनी रहीं, 'तो इसमें मैं क्या कर सकती हूं?'

नानाजी बोले, 'आप रानी हैं। आप नहीं तो और कौन कर सकता है? मुझे अपने राज में बसने की जगह दीजिए। मैं यों टलने वाला नहीं हूं।' रानी को बोटरों ने तो हराया ही था, नानाजी की विनम्रता ने भी हरा दिया। उन्होंने सोचा, रानी होकर अपने सांसद को जमीन का कोई तुच्छ-सा टुकड़ा दिया, तो क्या दिया? इसलिए उन्होंने थोड़ी दूर स्थित इटियाथोक के पास के एक कस्बेनुमा ग्राम का नाम लिया और कहा, 'वहां मेरी जितनी भी जमीन है, आज से आपकी हुई। जाइए, शौक से बसिये और चाहें तो मेरे महल से भी बड़ा घर बना लीजिए।'

नानाजी वहां बसे जरूर, मगर अपना घर नहीं बनाया। एक नया ग्राम बसाया, जयप्रभा ग्राम। 25 नवम्बर, 1978 को तत्कालीन राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी जयप्रभा ग्राम का उद्घाटन करने आए। कार्यकर्ताओं के लिए दरी या टाटपट्टी पर बैठकर पत्तल में भोजन करने की व्यवस्था थी। किसी कार्यकर्ता ने नानाजी से पूछा कि क्या राष्ट्रपति और दूसरे गणमान्य अतिथियों के लिए भोजन की अलग से कोई व्यवस्था की जाए? नानाजी ने मना कर दिया और कहा कि राष्ट्रपति भी सभी लोगों की तरह टाटपट्टी पर बैठेंगे और पत्तल में भोजन करेंगे। अन्ततः नीलम संजीव रेड्डी ने पत्तल में ही भोजन किया।

गोंडा प्रकल्प के उद्घाटन अवसर पर तत्कालीन राष्ट्रपति डा. नीलम संजीवा रेड्डी व सरसंघचालक बालासाहब देवरस

**नानाजी ने बलरामपुर की रानी को चुनावों में तो हरा ही दिया था, वे उनकी विनम्रता से भी हार गई थीं। और बोलीं, वहां मेरी जितनी भी जमीन है, आज से आपकी हुई। और नानाजी ने वहां नया ग्राम बसाना प्रारंभ कर दिया। नाम पड़ा जयप्रभा ग्राम।**

यों जयप्रभाग्राम नानाजी का पहला प्रकल्प नहीं था। 1947 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने (जिसके नानाजी जीवनव्रती प्रचारक थे) 'राष्ट्रधर्म' का प्रकाशन शुरू करने का निर्णय लिया तो उनको प्रबंध निदेशक के पद की जिम्मेदारी दी। इस पद पर रहते हुए नानाजी ने 'पांचजन्य' का भी सफल निदेशन किया। 1950 में उन्होंने गोरखपुर में आम लोगों के सहयोग से देश का पहला सरस्वती शिशु मंदिर स्थापित किया तो 1969 में दिल्ली में दीनदयाल शोध संस्थान की स्थापना की। यह संस्थान नाना शाखाओं में फल-फूल रहा है और जयप्रभा ग्राम भी इसी के तहत है। चित्रकूट में पहले ग्रामीण (ग्रामोदय) विश्वविद्यालय की नींव रखने का श्रेय, राज्यसभा की सदस्यता और पद्मविभूषण जैसा सम्मान भी उनके हिस्से में था। सक्रिय राजनीति छोड़ने से पहले वे जनता पार्टी के महासचिव भी रह चुके थे लेकिन जयप्रभा ग्राम के लोगों के दिलों में बसने वाले नानाजी की छवि कुछ और ही थी।

यही कारण है कि उन्होंने अयोध्या के राममन्दिर-बाबरी मस्जिद विवाद के घोर उन्मादी दिनों में भी संघ परिवार की साम्प्रदायिकता का रथी बनने से परहेज रखा। हालांकि जयप्रभा ग्राम अयोध्या से बहुत दूर नहीं था और मंदिर आंदोलन की आड़ में फैलाए जा रहे हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की लपटें वहां भी पहुंचती ही थीं। नानाजी न उन दिनों के उग्र अयोध्या आन्दोलन से जुड़े, न ही 'हिन्दुत्व' व रामराज्य की वैसी व्याख्या को स्वीकार किया। शायद वे समझते थे कि 'हिन्दुओं' से ज्यादा मनुष्यमात्र को उनकी जरूरत है।

नानाजी ने 60 वर्ष के होते सक्रिय राजनीति से संन्यास ले लिया था और उनका सुझाव था कि सारे नेताओं को इस उम्र के बाद खुद को स्वेच्छा से राजनीति से अलग कर लेना चाहिए ताकि युवाओं को आगे बढने और बागडोर संभालने का मौका मिल सके। लेकिन और तो और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से दीक्षा प्राप्त करके राजनीति में आए महानुभावों ने भी इसे नहीं माना और वे केन्द्र की सत्ता में आए तो नानाजी को राष्ट्रपति बनाने को 'आतुर' हो उठे। अटल विहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व काल में राष्ट्रपति चुनाव होने को हुए तो प्रत्याशी के रूप में नानाजी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की पहली पसन्द थे। मगर इसका प्रस्ताव नानाजी के समक्ष लाया गया तो उनका उत्तर था कि मैं अपने सन्यास पर कायम हूं। राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए इसे तोड़ नहीं सकता। वैसे भी मेरे विचार से यह पद किसी ऐसी विभूति को दिया जाना चाहिए जो पूरी सक्रियता से इसका दायित्व निभा सके।

नानाजी ने 94 वर्ष की उम्र पाई। इस रूप में कह सकते हैं कि उन्होंने भरपूर जीवन जिया। इस अर्थ में भी कि लोभ और मोह को अपने अंतिम दिनों तक उन्होंने पास नहीं फटकने दिया। विचारधारा के बन्दी तो वे नहीं ही थे, मुंह पर प्रशंसा और पीठ पीछे आलोचना करने वालों की पहुंच से भी दूर रहते थे। जयप्रभा ग्राम में उनसे मिलने जाने वालों में जितनी संख्या उनकी विचारधारा से सहमत लोगों की होती थी, असहमतों की भी उससे कम नहीं होती थी तो इसका कारण साफ था कि नानाजी ने कभी किसी को 'कुंचे आसन' से सम्बोधित नहीं किया, किसी से भी उसके विचारों के कारण घृणा नहीं की।

उनका व्यक्तित्व कितना बहुआयामी था, इसे समझना हो तो इस तथ्य से समझना चाहिए कि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए 'अप्रतिम संगठनकर्ता', साथ ही 'राष्ट्रवादी चिन्तक', देश के लिए 'बेचैन समाजसेवी, बहुतों के लिए 'समाज सुधारक' तो जयप्रभा ग्राम के निवासियों के लिए मार्गदर्शक और अभिभावक थे। वे भोग की नहीं, त्याग की संस्कृति के प्रतिनिधि थे। उनका अपने देश या समाज से ज्यादा से ज्यादा लेने में नहीं उन्हें ज्यादा से ज्यादा देने में यकीन था। इस यकीन की रक्षा करते हुए वे अपनी पार्थिव देह भी शोधार्थियों को दे गये। वह देह जो कभी लोकनायक जयप्रकाश नारायण को पुलिस की लाठियों से बचाने के प्रयास में घायल हो गई थी।

हां, यह बात तो रह ही गई कि साधारण-सी मगर प्रभावशाली वेशभूषा में रहने वाले नानाजी के 'आराध्यों' में पंडित दीनदयाल के साथ ही लोकनायक भी थे। अवध में कई लोगों को नानाजी को देखकर बाबा रामचंद्र की याद आती थी। बाबा रामचन्द्र ने नानाजी की ही तरह महाराष्ट्र में जन्म लेकर उत्तर भारत को अपनी कर्मभूमि बनाया और 1920 के आसपास अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध उठ खड़े हुए अवध के किसानों के आंदोलनों को नयी धार देने में प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह किया था। नानाजी को खोकर उनका जयप्रभा ग्राम अब बहुत उदास है। होली के हुड़दंग पर भी भारी रही इस उदासी से ग्राम के किसान-मजदूर, दस्तकार और कलाकार तो वेमन हैं ही, नानाजी के 'वैचारिक शत्रु' भी कुछ कम भरे हुए नहीं हैं।

नानाजी 2006 के अगस्त में आखिरी बार जयप्रभा ग्राम आये थे और हर किसी से अपनी चिरपरिचित आत्मीयता के साथ मिले थे। जयप्रभा ग्राम में उन्होंने आयुर्वेदिक दवाएं बनाने के केन्द्र ग्रामोदय रसशाला, अस्पताल, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र, गौशाला और कालेज के अतिरिक्त भक्तिधाम नाम से एक मन्दिर की भी स्थापना करायी थी जिसमें श्रद्धालु एक साथ चारों धामों का दर्शन कर सकते हैं। ■

**कृष्ण प्रताप सिंह द्वारा लिखित यह लेख उत्तर भारत के प्रतिष्ठित अखबार दैनिक ट्रिब्यून की वेबसाइट से लिया गया है।**